

महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार और उसके विभिन्न आवश्यक उपागम

Gaurav Suman^{1*} Dr. Ramakant Sharma²

¹ Research Scholar

² Research Supervisor, Sunrise University, Alwar, Rajasthan

सारांश:- महात्मा गाँधी की दृष्टि में शिक्षा का तात्पर्य केवल औपचारिक ज्ञान नहीं, बल्कि व्यवहारिक और अनुभवगत ज्ञान है, जो मानव को एक नयी दृष्टि और मौलिक चिंतन की विशेषता प्रदान करती है। वास्तविकता तो यह है कि प्रत्येक शिशु को प्रारंभिक शिक्षा सर्वप्रथम अपने परिवार में ही प्राप्त होती है। गाँधीजी की संकल्पना में शिक्षा वही है, जो बच्चों के अज्ञान के अंधकार को विनष्ट कर दे और उसकी जगह एक नई ज्ञान-रोशनी और जिज्ञासा-पिपासा जागृत कर दें। सही शिक्षा वह है जो बच्चों के अंदर विद्यमान सर्वोत्तम तत्त्व को बाहर निकाल दे और उसे सही और सुन्दर मार्ग की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दे। बच्चे के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास में जो सहयोग करे वही वास्तविक शिक्षा है। शिक्षा को गाँधीजी ने एक ऐसे महत्वपूर्ण साधन के रूप में माना है, जिससे बच्चे के व्यक्तित्व का सर्वांगीण और सम्यक विकास होता है।

शब्द संकेत:- महात्मा गाँधी के शैक्षिक विचार और उसके विभिन्न उपागम

-----X-----

भूमिका

महात्मा गाँधी की दृष्टि में शिक्षा का तात्पर्य केवल औपचारिक ज्ञान नहीं, बल्कि व्यवहारिक और अनुभवगत ज्ञान है, जो मानव को एक नयी दृष्टि और मौलिक चिंतन की विशेषता प्रदान करती है। गाँधीजी की संकल्पना में वैसी सारी शिक्षाएँ व्यर्थ और निरर्थक हैं, जो बच्चे को एक स्वतंत्र और समाजोपयोगी नागरिक नहीं बना सकें। शिक्षा तो वस्तुतः है। यह तो व्यक्ति को पूर्णता प्रदान करती है और उसके अधूरेपन को समाप्त करती है। गाँधीजी के विचार में सच्ची शिक्षा वही है जो मनुष्य के तन, आत्मा और हृदय आदि के बीच संगतिपूर्ण सामंजस्य स्थापित करे और उसके व्यक्तित्व को प्रदान करे। गाँधीजी अक्षर ज्ञान को कदापि नहीं मानते। उनकी शिक्षा की संकल्पना में समाज का सर्वतोन्मुखी विकास की प्रक्रिया की पहचान निहित है। भौतिकवाद विकास से जुड़ी शिक्षा गाँधीजी की दृष्टि में अधूरी है। शिक्षा तब पूर्णता को प्राप्त करती है, जब इसके साथ आध्यात्मिकता हो और जिससे मानवता की सेवा और रक्षा हो।

शैक्षिक विचार:-

गाँधीजी ने सच्ची शिक्षा की संकल्पना की पृष्ठभूमि में माँ के दूध को भी महत्वपूर्ण माना है, क्योंकि उनका विश्वास है कि सच्चे अर्थों में बच्चों में माँ के दूध के साथ ही उत्तम संस्कार की नींव पड़ती है, ताकि उसमें मातृ प्रेम और मातृभूमि प्रेम की भावना का आसानी से विकास हो सके। शिक्षाशास्त्री हक्सले ने भी सच्ची शिक्षा के बारे में अपने विचार प्रकट किये हैं कि उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसका शरीर प्रकट किये हैं कि उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसका शरीर इतना सधा हुआ है कि उसके काबू में रह सके और आराम एवं आसानी के साथ उसका बताया हुआ काम करे। उस आदमी को सच्ची शिक्षा मिली है, जिसकी बुद्धि शुद्ध शांत हो, शांत है और न्यायदर्शी है। उस आदमी ने सच्ची शिक्षा पायी है, जिसका मन कुदरत के कानूनों से भरा है और जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं जिसकी अन्तरवृत्ति विशुद्ध है और जो बीच आचरण को धिक्कारता है तथा दूसरों को अपना जैसा समझता है। ऐसा आदमी सचमुच शिक्षा पाया हुआ माना जाता है, क्योंकि वह कुदरत के नियमों पर चलता है।

गाँधीजी ने मानव को पशुवत प्रवृत्तियाँ से युक्त नहीं, बल्कि मानवीय गुणों, विशेषताओं तथा अच्छाइयों से युक्त माना है और शिक्षा को उस साधन के रूप में व्यक्त किया है, जो व्यक्ति या मनुष्य को एक “मानव” के रूप में विकसित करती है। लोकनायक जयप्रकाशजी ने भी शिक्षा का अभिप्राय व्यक्ति को एक उत्तम मानव बनाने वाली प्रक्रिया के रूप में व्यक्त किया है और मानव के अर्थ को भी स्पष्ट किया है “हम लोग मानव के सिवा और सब कुछ हैं, भारतीय हैं, हिन्दू हैं, मुस्लिम हैं, इसाई हैं, ब्राह्मण हैं, लिंगायत हैं, कलाकार हैं, विद्वान हैं, वैज्ञानिक हैं, समाजवादी हैं, साम्यवादी हैं, लेकिन मानव नहीं हैं। मानव बनने के माने यह है कि धर्म, विज्ञान, राष्ट्रीयता की विचारधारा से इन्कार करना, वरन् उसके माने हैं, इसके परे जाना और इन बाह्य आवरणों को हटाकर असली मानव को पहचानना। मानव बनाने का मतलब है, मानव मात्र को भाई मानना, विश्व नागरिक बनाना, हर मानव के जीवन में सुख और स्वातंत्र्य की कामना करना। मानव बनने का अर्थ है, अन्याय और अत्याचार का मुकाबला करना, युद्ध कर निषेध करना तथा उसका नैतिक विकल्प ढ़ढना।” इस प्रकार उन्होंने शिक्षा को “मानव” बनाने की प्रक्रिया के रूप में व्यक्त कर उसमें बहुत सी बातों को सन्निहित कर दिया है।

गाँधीजी ने शिक्षा के प्राचीन अवधारणा “साविधा या विमुक्तये” को महत्वपूर्ण माना है। इसे उन्होंने सत्यबोध कहा है, जिससे जीवन की उच्चतम लक्ष्य “मोक्ष” को प्राप्त किया जाता है। उन्होंने इसके आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के साथ ही सांसारिक परिप्रेक्ष्य में इसका अभिप्राय बाह्य बन्धनों से मुक्त बनाया है। गुजरात महाविद्यालय में दिये गये एक भाषण में उन्होंने कहा है “कोई भी जीवधारी स्वतंत्रता की अवस्था में ही फल-फूल सकता है, परतंत्रता में नहीं। “सा विद्या या विमुक्तये” यह हमारा आदर्श है। मैंने विचार करके देखा है कि इस सूत्र का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा है। जो इतनी छोटी सी मुक्ति को भी प्राप्त नहीं कर सकता, उसी को “यह मुक्ति” मिल सकती है। जो इतनी छोटी सी मुक्ति को भी प्राप्त नहीं कर सकता, उसे बड़ी मुक्ति मिल सकती है? अतएव मुक्ति के प्राकृति और वास्तविक दोनों अर्थों में हमारा यही आदर्श है।”

गाँधीवादी शैक्षिक चिंतन के अंतर्गत चरित्र निर्माण को शिक्षा का सर्वप्रमुख उद्देश्य बताया गया है। उन्हीं के शब्दों में “मैंने हृदय की संस्कृति या चरित्र के निर्माण को प्रथम स्थान दिया है।” स्वाधीन भारत के शैक्षिक उद्देश्य के संबंध में गाँधीजी ने कहा- “मैं चरित्र निर्माण में साहस, शक्ति, सद्गुणों और बड़े लक्ष्यों की पूर्ति में अपने को भूल जाने की योग्यता का विकास करने का प्रयत्न करूँगा। यह सहित्यिक शिक्षा में अधिक महत्वपूर्ण है।” गाँधीजी ने चरित्र निर्माण का शिक्षा का मध्य बिन्दु माना है। उनका कथन है “तुम्हारी समस्त शिक्षा व्यर्थ है यदि सत्य और शुद्धता पर

आधारित नहीं हैं। छात्रों यदि तुम्हें अपने चरित्र और पवित्रता का ध्यान नहीं है और यदि तुम विचार, वाणी और कर्म से पवित्र नहीं हो, तो तुम्हें नष्ट हुआ समझना चाहिए, भले ही तुम उच्च कोटि के विद्वान बनकर विद्यालय से निकालो।” गाँधीजी के अनुसार “व्यक्तिगत चरित्र की पवित्रता, एक ठोस शिक्षा के निर्माण के लिए आवश्यक है, विद्यार्थियों को अपने भीतर खोजना है और अपने व्यक्तिगत चरित्र का निर्माण।” गाँधीजी ने शिक्षा के द्वारा चरित्र के गठन पर बल दिया है क्योंकि चरित्र विकास को उन्होंने शिक्षा का प्रथम सोपान माना है। बच्चों को पढ़ने-लिखने से अधिक यह सिखाना चाहिए कि उत्तम चरित्र क्या है और उसे अपने में कैसे उतारा जाय। इस प्रकार गाँधीजी शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का चारित्रिक उन्नयन करना चाहते थे, जिससे वह मन, वचन, और कर्म से शुद्ध हो सके।

गाँधीजी की शिक्षा के उद्देश्य:-

गाँधीजी ने शिक्षा उद्देश्यों पर गहनता से चिन्तन और मनन किया तथा भारतीय पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर इसके स्वरूप का निर्धारण किया है। उन्होंने शिक्षा उद्देश्यों के निर्धारण में अतिव्यापक और व्यावहारिक दृष्टिकोण को अपनाया है, जिस पर उनके दार्शनिक विचारों, आदर्शों, सार्वभौमिक चिन्तन और अनुभूतियों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गाँधीजी भारतीय समाज को एक ऐसे समाज के रूप में विकसित करना चाहते थे, जिसका आधार सत्य, अहिंसा प्रेम, नैतिकता, समान अवसर, स्वतंत्रता, न्याय और स्वावलम्बन हो। गाँधीवादी चिन्तनधारा के महान् विचारक विनोबाजी ने लिखा है “झूले से लेकर ‘मशान तक का सारा ज्ञान देते रहना है। आज का आवश्यक ज्ञान दें और समय-समय पर जिस ज्ञान की आवश्यकता होगी, उसको सम्पादन करने की शक्ति हासिल करायें और अन्दर छिपा हुआ स्वयंभू ज्ञान बाहर निकलें ऐसा तिहरा कार्यक्रम हो सकता है प्राकृतिक ज्ञान, ज्ञान शक्ति, सम्पादन आत्मज्ञान ऐसे नाम उन्हें दे सकते हैं।” गाँधीजी ने कहा था कि, शिक्षा त्रिविध होनी चाहिए, हाथ, हृदय और दिमाग की, परन्तु शिक्षण में विषय तो एक ही हो सकता है, वह है “जीवन विकास”। उसके तीन अंग हैं-वाणी, शरीर और मन।” इस अभिव्यक्ति से यह स्पष्ट होता है कि विनोबाजी भी गाँधीजी के समान ही व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्णता प्रदान करना चाहते थे, जो पहले से ही उसमें विद्यमान होता है। इसके साथ ही व्यक्ति में ऐसी कुशलता की अभिवृद्धि करना चाहते थे।

गाँधीजी के अनुसार शरीर, मन और आत्मा का विकास एक साथ और समन्वित ढ़ंग से होना चाहिए। शिक्षा अपना लक्ष्य तभी प्राप्त कर पायेगी जब इन तीनों अंगों में परस्पर सम्बन्ध

स्थापित कर इनका समुचित विकास करें। गाँधीजी ने अपना दृढ़ निश्चय इन शब्दों में व्यक्त किया है, “जब तक शरीर और मन के विकास के साथ-साथ आत्मा का जागरण नहीं होगा, तब तक शरीर और मन का जागरण अधूरा रहेगा। पूर्ण मनुष्य का निर्माण करने के लिए इन तीनों का समिश्रण आवश्यक है।” इस प्रकार गाँधीजी एक पूर्ण मानव का विकास शिक्षा के द्वारा करना चाहते थे। वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्यों के समन्वय संबंधी गाँधीजी के विचारों को व्यक्त करते हुए डॉ. पटेल ने लिखा है “गाँधीजी के दर्शन का सार यह है कि वैयक्तिकता का विकास एक वातावरण में ही हो सकता है जहाँ यह समान रुचियों और समान क्रियाओं पर घोषित हो सकती है। इसलिए वे चाहते हैं कि अपने विद्यालयों को समुदायों में बदल दें क्योंकि समुदाय में एकता को कुचला नहीं जा सकता वरन् सामाजिक संपर्कों और सेवा के अवसरों से विकसित किया जाता है।” गाँधीवादी शैक्षिक चिंतन के अनुसार शिक्षा का वैयक्तिक और सामाजिक उद्देश्य समन्वित रूप से व्यक्त हुआ है।

गाँधीजी शैक्षिक चिंतन के अनुसार राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ ही विश्व मानवतावाद की भावना को विकसित करने का शैक्षिक लक्ष्य निर्धारित किया गया है। गाँधीजी इसके द्वारा राष्ट्रीयता की भावना विकसित करना चाहते थे, परन्तु उनके राष्ट्रवाद का लक्ष्य यह नहीं था, हम भारतीय, शेष मानवता से अपने आप को अलग समझें और पृथक् रखें। गाँधीजी के राष्ट्रवाद वास्तविक लक्ष्य है कि भारत एक दिन अपने को विश्वमानवता में व्यय कर दें, परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गाँधीजी भारत के स्वतंत्र अस्तित्व को समाप्त करना चाहते थे। गाँधीजी चाहते थे कि भारत पहले स्वतंत्र होकर अपने पैर पर खड़ा हो जाय और बाद में अपनी आध्यात्मिक सभ्यता और संस्कृति के द्वारा जगत का मार्ग दर्शन करे। उन्होंने “स्वदेशी व्रत” के रूप में “स्वदेश सेवा” का लक्ष्य रखा, जिसका व्यापक रूप व्यक्त करते हुए लिखा है: “स्वदेशी की शुद्ध सेवा करने में विदेश की भी शुद्ध सेवा आती है। जीव मात्र के साथ ऐसा साधते हुए, स्वदेशी धर्म को जानने व पालने वाला देह का भी त्याग कर सकता है।”

पाठ्यक्रम:-

गाँधीजी ने प्राथमिक शिक्षा 7-14 वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए निर्धारित किया है। इस अवधि की शिक्षा को उन्होंने सर्वाधिक महत्व दिया है। उन्हीं के शब्दों में “प्राथमिक शिक्षा मेरी नजर में सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीज है। उसकी मर्यादा मैंने यही कायम की है कि जितनी पढ़ाई मैट्रिक तक अंग्रेजी को छोड़कर होती है, उतनी ही इसमें हो जानी चाहिए।” गाँधीजी ने प्राथमिक स्तर की शिक्षा के पाठ्यक्रम की रूप-रेखा प्रस्तुत करते हुए लिखा है: “मेरी मान्यता यही है कि प्राथमिक स्कूल को स्वावलम्बी

बनने का तुरन्त नजर में आने वाला उद्योग कटाई, पिसाई, वगैरह है। गाँधीजी की शिक्षा योजना सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा योजना थी परन्तु उन्होंने पूर्व बुनियादी शिक्षा पर विशेष रूप से विचार व्यक्त किया है।

गाँधीजी ने पाठ्यक्रम के निर्धारण में इस बात को भी ध्यान में रखा है कि किन-किन विषयों की शिक्षा उपयोगी होते हुए भी अभी तक नहीं दी जा रही है। उन्होंने लिखा है- “अब जिन विषयों की शिक्षा बिल्कुल नहीं दी जाती उन पर विचार करें। शिक्षा का मुख्य हेतु चरित्र होना चाहिए। धर्म के बिना चरित्र कैसे बन सकता है, यह मुझे नहीं सूझता-जिस देश में 85 से 90 प्रतिशत स्त्री-पुरुष खेती के धंधे में लगे हुये हैं, उसमें इस धंधे का जितना ज्ञान दिया जा सके कम है। बुनाई का धंधा नष्ट होता जा रहा है, किसानों के लिए यह आवकांश का धंधा था। इस धंधे को हमारे पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त नहीं है। हमारी शिक्षा में युद्ध विज्ञान को स्थान नहीं है।

शिक्षण पद्धति:-

गाँधीजी ने अपनी शिक्षण-पद्धति को प्रधानतः क्रिया और स्वानुभव द्वारा सीखने पर आधारित किया है। उन्होंने बच्चों की क्रियाशीलता और खेल की स्वाभाविक प्रवृत्ति का सूक्ष्मता से निरीक्षण किया था और इसी को आधार मानकर इसके परिमार्जन के साथ ही शिक्षण प्रदान करने का बल दिया है। उन्होंने अपनी योजना को उद्योग केन्द्रित बनाया है। गाँधीजी ने लिखा है- “ग्रामोद्योग के शिक्षण को शिक्षा का आधार और केन्द्र समझने की जरूरत तथा कीमत के बारे में मुझे जरा भी शक नहीं।” गाँधीजी हस्त कौशल या उद्योग की शिक्षा का केवल सैद्धान्तिक ही नहीं, बल्कि विशेष रूप से क्रियात्मक अनुभव प्रदान करना चाहते थे। उनका कहना था कि “विद्यार्थियों में स्वतंत्र बुद्धि आनी चाहिए। उन्हें मात्र नकलची नहीं होना चाहिए। उन्हें अपने आप सोचना और करना सीखना चाहिए।” गाँधीजी ने विश्वास व्यक्त किया है कि यदि बच्चे खेल में अच्छी प्रगति करेंगे, बल्कि जो ज्ञान वे प्राप्त करेंगे स्वानुभूति के लिए प्रयोग करने का सुझाव दिया है। उन्होंने कहा है- “विद्यार्थियों को अपने परिश्रम द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, प्राचीनकाल में जब कोई वैज्ञानिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती थी, तब विद्यार्थी स्वयं अपने शिक्षक हुआ करते थे और प्रथम श्रेणी के विद्वान तथा विशेषज्ञ बन जाते थे।” गाँधीजी ने स्वप्रयोग को न केवल उद्योग या हस्त कौशल की शिक्षा के लिए उपयोगी बताया है, बल्कि उच्च गुणों की प्राप्ति के लिए भी इसे सबसे प्रभावी विधि माना है।

गाँधीजी मानव आचरण के सूक्ष्म द्रष्टा थे। उन्होंने बालक के मस्तिष्क में उपर से ज्ञान लादने का विरोध किया है। उसके स्थान पर उन्होंने शिशुओं में जिज्ञासा उत्पन्न कर, उसे स्वाभाविक रूप में विकसित करने पर बल दिया है। गाँधीजी और उनके वैचारिक अनुयायियों ने प्रचलित शिक्षण पद्धतियों को अनुपयुक्त तथा अनुपयोगी बताया है क्योंकि उनके अनुसार वे जीवन को खंडित करने वाली हैं। ये जीवन का विस्तार नहीं करती, बल्कि जीवन को खंड-खंड करके देखती हैं और इसी आधार पर पर शिक्षा प्रदान करती हैं। इस सन्दर्भ आचार्य विनोबाजी ने लिखा है “जब हम शिक्षा की चर्चा करते हैं तो हम प्रायः अध्ययन की विभिन्न प्रणालियों जिनका आज देश में प्रचलन है जैसे माण्टेशरी शिक्षा प्रणाली, खोज प्रणाली इत्यादि पर विचार करते हुए, परन्तु इन पद्धतियों और तरीकों का कोई महत्व नहीं।” गाँधीजी ने शिक्षा की एक पूर्ण-पद्धति के रूप में बुनियादी शिक्षा पद्धति को प्रस्तुत किया है जिसमें जीवन और शिक्षा को एक ही खंड मानकर बालक का स्वाभाविक विकास किया जाता है। गाँधीजी ने बालकों की क्रियाशीलता और अनुकरण की प्रवृत्ति का बहुत सूक्ष्म निरीक्षण किया था। इस आधार पर उन्होंने अपनी शिक्षण पद्धति में इन बातों की अवहेलना की जाती है, इसलिए वह बच्चों को वास्तविक ज्ञान और अनुभव प्रदान करने में असफल रही हैं। गाँधीजी और गाँधीवादी विचारकों ने शिक्षण-विधियों को बच्चों के स्वाभाविक प्रवृत्तियों और शक्तियों के अनुकूल अधिकाधिक उपयोगी तथा प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया है।

बच्चों में अनुकरण करने की तीव्र प्रवृत्ति होती है। गाँधीजी ने बच्चों में पायी जानेवाली तीव्र अनुकरणात्मक शक्ति एवं प्रवृत्ति का सूक्ष्म अध्ययन किया था, जिसके आधार पर उनके मन में यह दृढ़ विष्वास उत्पन्न हो गया था कि बच्चे अनुकरण द्वारा ही सबसे ज्यादा सीखते हैं। गाँधीजी ने इसलिए गुरु के चरित्र को भी महत्वपूर्ण माना है और बच्चों के सम्पूर्ण कार्य-सम्पादन का प्रदर्शन करके उन्हें सीखने का सुझाव दिया है। सामाजिक, पारिवारिक और पर्यावरण सहयोग की सीख में अहम भूमिका होती है। गाँधीजी के शिक्षण पद्धति का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि विवेकपूर्ण, शारीरिक अंगों का प्रयोग क्रिया और स्वानुभव, वाचन और कर्म, अनुकरण, सहयोग तथा सह-सम्बन्ध द्वारा सीखने की महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

छात्र-शिक्षक सम्बन्ध:-

गाँधीजी ने शिक्षकों के कार्य को गुरुतर माना है, क्योंकि उन पर बच्चों के विकास को सही दिशा में निर्देशित करने, यथोचित सहायता करने आदि के साथ ही समाज के विकास के लिए समुचित वातावरण तैयार करना है। उन्होंने कहा है “शिक्षकों को अपना कार्य इस तरह से सम्पादित करना चाहिए, जिसमें

अनुकूल भौतिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण उपस्थित हो जाय।” यह कार्य में लगा दें, तो हम जितना समझते हैं, उतना कठिन वह नहीं है। वे अगर अपने विद्यार्थियों के पिता का पद ले लें, तो उन्हें अपने आप मालूम हो जायगा कि उन्हें किस चीज की जरूरत है और वे फौरन उन्हें देने बैठ जायेंगे और कोशीश करके उतनी योग्यता प्राप्त कर लेंगे तथा हर तरह की शिक्षा का उद्देश्य चरित्र बनाना होना चाहिए, यह बात याद रखेंगे, तो चरित्रवान् शिक्षकों को निराश होने की जरूरत नहीं है।”

गाँधीजी ने शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षक को एक प्रभावी इकाई माना है। इसलिए सर्वप्रथम उन्होंने इस बात पर विचार व्यक्त किया है कि शिक्षक कैसा होना चाहिए? उनका अभिमत है “आचार्य वह है, जो अपने आचरण से सदाचारी बनावें।” इस कथन से स्पष्ट होता है कि शिक्षक को आदर्श गुण-सम्पन्न होना चाहिए। उन्होंने योग्य और अच्छे संस्कार वाले शिक्षकों के चयन पर बल दिया है। उनका कथन है “अनिवार्य अध्यापन के लिए जिन स्त्री-पुरुषों को चुना जाय, उनमें पहले से ही स्वदेश प्रेम, स्वार्थ त्याग की भावना, कुछ अच्छे संस्कार और दस्तकारी का ज्ञान, इतनी बातें अवश्य होनी चाहिए।” गाँधीजी ने अच्छे संस्कार के अंतर्गत सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्यायप्रियता, सहानुभूति, कर्तव्यनिष्ठता, अस्तेय, पवित्रता आदि गुणों का होना आवश्यक बताया है। उनके अनुसार शिक्षक को जिज्ञासु और समस्याओं का निराकरण करने वाला होना चाहिए।

गाँधीजी के अनुसार शिक्षकों को अपने स्वार्थ से उपर उठकर कार्य करने वाला होना चाहिए। उन्होंने इस बात का भी उल्लेख किया है कि समाज में शिक्षकों को उचित स्थान नहीं प्राप्त है, परन्तु अध्यापक अपने आप को उँचा स्थान दिला सकता है, जिसके लिए उसमें कर्तव्य बोध की प्रधानता होनी चाहिए। वह अपने कार्यों के द्वारा विद्यालय को नवीन स्वरूप प्रदान करके उसे राष्ट्रीय चेतना के अनुरूप बना सकता है। उनका अभिमत “शिक्षक यदि आजीविका को भूलकर शिक्षादान के अपने कर्तव्य को ही याद रखें तो शालाओं में नवीन चेतना दिखाई देने लगे और वे सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय हो जाएँ।”

गाँधीजी ने शिक्षकों को आदर्श उपस्थित करने का सुझाव दिया है क्योंकि छात्रों पर उनका सर्वोधिक प्रभाव पड़ता है। उन्होंने लिखा है- “शिक्षक की पदवी ऐसी है कि लड़के और लड़कियाँ सदा उनके असर में रहते हैं। शिक्षक की बात को वे वेद वाक्य समझते हैं।” गाँधीजी चाहते थे कि “शिक्षक बाहर और भीतर से आदर्श और यथार्थ में एक रूप रहें और शिक्षक बालकों के लिए प्रेरणा स्रोत बनें, जिससे उनकी आत्मिक शिक्षा अपने आप स्वाभाविक ढंग से होती रहे।” शरीर की शिक्षा शरीर के कसरत से दी जा सकती है, बुद्धि की शिक्षा बुद्धि की कसरत से

और इसी तरह आत्मा की शिक्षा की कसरत से दी जा सकती है। आत्मा की कसरत तो बच्चें शिक्षक के बर्ताव से ही सीख सकते हैं। इसलिए विद्यार्थी मौजूद हो या न हो शिक्षक को सावधान रहना चाहिए कक्षा में बैठा हुआ शिक्षक अपने बर्ताव से अपने शिष्यों की आत्मा को हिला सकता है।

छात्र और शिक्षा:-

गाँधीजी ने छात्र जीवन को बहुत ही महत्वपूर्ण माना है। उन्होंने विद्यार्थी का अभिप्राय व्यक्त करते हुए लिखा है- “विद्यार्थी का अर्थ है- वह व्यक्ति जिसमें विद्या की भूख हो। जानने योग्य वस्तुओं का ज्ञान ही विद्या है और जानने योग्य है केवल आत्मा का ज्ञान, वही केवल वास्तविक ज्ञान है।” इस आधार पर गाँधीजी ने कहा कि जीवन भर व्यक्ति को ज्ञानार्जन करना चाहिए। इस प्रकार का विचार विनोबा जी ने भी व्यक्त किया है। उन्होंने अपने एक प्रवचन में छात्रों को अनवरत ज्ञान प्राप्त करते रहने का सुझाव देते हुए कहा “तिहत्तर साल का विद्यार्थी हूँ। कोई दिन नहीं जाता जिस दिन मैं कोई विद्या का अध्ययन न किया हो। आज के दिन भी मेरा अध्ययन हुआ और अध्यापन भी साथ-साथ हुआ है। गाँधीजी ने विद्यार्थियों को संयमी और विनयशील बनने का सुझाव दिया है। उनकी मान्यता रही है कि संयम में विशेष प्रकार का आनन्द सन्निहित होता है, छात्रों को उसकी अनुभूति करनी चाहिए। उन्हीं के शब्दों में “मेरी दृष्टि में विद्यार्थियों का जीवन संयमी होनी चाहिए। संयम में एक आनन्द रहता है। मैं चाहता हूँ कि विद्यार्थी उस आनन्द का अनुभव करें।” उन्होंने संवेदनशीलता को विद्यार्थियों का एक आवश्यक गुण माना है और कहा है “विद्यार्थियों को विनय त्याग कभी नहीं करना चाहिए। वे आचार्यों को विषय में एक भी कड़वे शब्द का उच्चारण न करें। कठोर शब्द अपने बोलने वालों का नुकसान करते हैं, जिनके लिए वे कहे जाते हैं-उनका नुकसान नहीं होता। कथन से यह स्पष्ट होता है कि गाँधीजी छात्रों को हर दृष्टि से और स्थिति में विनम्र देखना चाहते थे।

गाँधीजी चिन्तन के अनुसार छात्रों के विषम अभिव्यक्त विचार उनके जीवन के सभी आयामों से सम्बन्धित हैं, जिसमें शैक्षिक जगत की समस्याओं को भी ध्यान में रखा गया है। ये समस्त विचार निःसंदेह रूप से अनुकरणीय और छात्रों के जीवन को हर दृष्टि से समुन्नत बनाने के लिए उपयुक्त हैं। गाँधीजी के अनुसार “शिक्षक और छात्र एक साथ कार्य करते हैं, अतः अध्यापक के व्यक्तित्व का प्रभाव छात्र पर सर्वोधिक पड़ता है।” लड़के पुस्तकों तथा व्याख्यानों की अपेक्षा “अध्यापकों के जीवन से अधिक सीखते हैं। उस अध्यापक को धिक्कार है, जो मुख से एक बात कहता है, पर जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यवहार करता है।” गाँधीजी का विश्वास था यदि शिक्षक सुयोग्य है तो वह अपने

सभी कार्यों में सफल रहता ही है, विद्यार्थियों की निष्ठा का केन्द्र भी होता है। यदि शिक्षकों में विभूत भत्ता होगी तो वह हर उपाय से अपना काम चला लेगा। शिक्षक तो लौह चुम्बक की तरह काम करते हैं। उनके आस-पास लड़के बने ही रहें, उन्हें घड़ी भर छोड़ना पसन्द न करें। शिक्षक का वियोग विद्यार्थी को असह्य हो जाय।” इस प्रकार गाँधीजी की दृष्टि में शिक्षक को ऐसा होना चाहिए जो छात्रों की बौद्धिक आवश्यकताओं, रुचियों और प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उनके साथ कार्य करें तो अच्छे ऐसे शिक्षक को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। उनके बीच जो सम्बन्ध विकसित होता है, वह आन्तरिक प्रेरणा का सम्बन्ध होता है।

गाँधीजी ने बताया है कि शिक्षा प्रक्रिया को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षक और छात्र के बीच सहयोगात्मक सम्बन्ध होना आवश्यक है। एक दूसरे के बीच होने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के मध्यम से स्वाभाविक रूप से द्विमुखी ज्ञानार्जन की क्रिया सम्पन्न होती है। उन्होंने लिखा है जो शिक्षक अपने विद्यार्थियों से घुलमिल जाता है, वह जितना उन्हें सिखाता है। उससे अधिक उनसे सीखता है, जो अध्यापक अपने विद्यार्थियों से कुछ सिखाता नहीं, मेरी दृष्टि में वह निकम्मा होता है, मैं जब किसी से बात करता हूँ तब उससे भी सीखता हूँ। जितना उसे देता हूँ, उससे अधिक उससे लेता हूँ। इस प्रकार एक सच्चा शिक्षक अपने शिष्य का भी शिष्य बनकर रहता है। यदि आप इस दृष्टि से अपने शिष्यों को सिखाने का काम करेंगे तो आप उनसे बहुत सीख पायेंगे।” इस प्रकार गाँधीजी ने बिल्कुल व्यावहारिक धरातल पर शिक्षक-छात्र सम्बन्ध को निकट और घनिष्ट बनाने का निर्देश दिया है क्योंकि जब तक शिक्षक और छात्र एक दूसरे के निकट नहीं होंगे तब तक शिक्षा अपने छात्र को अच्छी तरह नहीं समझ सकता। ऐसी दशा में न तो वह अपने छात्र को अच्छी तरह सिखा सकता है और न स्वयं कुछ नवीन बातों अपने अनुभव में जोड़ सकता है।

स्त्री और प्रौढ़ शिक्षा:-

अपने देश में अशिक्षित बालिकाओं और प्रौढ़ों की परिस्थितियों का गंभीरता से अवलोकन करने के पश्चात् गाँधीजी ने स्त्री और प्रौढ़ शिक्षा सम्बन्धी अपना विचार प्रस्तुत किया है। भारतीय समाज में बालक-बालिकाएँ और प्रौढ़ को अभी बहुत शिक्षा देना बाकी है। विनोबाजी ने भी स्त्री और प्रौढ़ शिक्षा को व्यावहारिक ज्ञान से जोड़ने का सुझाव दिया है। गाँधीजी ने स्त्रियों के लिए अलग पाठशालाओं खोलने की योजना प्रस्तुत किया था। उन पाठशालाओं में अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान करने का कोई प्रावधान नहीं था। उन्होंने अंग्रेजी पढ़ने की इच्छुक स्त्रियों के लिए व्यवस्था दीया है “जिन्हें सीखना होगा पुरुषों के लिए खोली गयी शालाओं में सीख सकेंगी। स्त्रियों के लिए खोली गयी

शालाओं में अंग्रेजी जारी करना गुलामी की उम्र बढ़ाने का कारण बन जाएगा।” उन्होंने स्त्रियों को अंग्रेजी की शिक्षा देने से इन्कार करते हुए कहा है- “मुझे ऐसा लगता है कि अंग्रेजी की शिक्षा देना उसकी हत्या करने के बराबर है। यदि उन्हें मातृभाषा द्वारा ऊँची शिक्षा मिलेगी तो वे गृह-संसार सोने का बना देंगी। इतना ही नहीं वे बेपट्टी-लिखी बहनों पर अपने चरित्र का प्रभाव डालकर उनकी हर तरह से सेवा कर सकेंगी।” गाँधीजी ने स्वीकार किया है कि स्त्रियों के लिए संस्कृत की शिक्षा लाभप्रद रहेगी परन्तु समयाभाव के कारण इसे अनिवार्य नहीं किया जा सकता। परन्तु यदि सम्भव हो सके तो संस्कृत प्रशिक्षण को सम्मिलित करने पर बल दिया है। “मैं प्रौढ़ शिक्षा को उस साधारण अर्थ में जैसा हमलोग समझते हैं, नहीं लूँगा बल्कि वह तो अभिभावक को शिक्षा मिलेगी, जिससे वे अभिभावक अपने बच्चों का पर्याप्त उत्तरादयित्व निभा सकें।”

गाँधीजी की दृष्टि में प्राथमिक शिक्षा सबसे अधिक महत्वपूर्ण चीज है। मैट्रिक तक इतनी पढ़ाई कर दी जाय उससे भी समाज में अच्छा नागरिक पैदा कर लिया जा सकता है। मैट्रिक के बाद कॉलेज की शिक्षा में भी क्रांति की जरूरत है। कॉलेज की शिक्षा में राष्ट्रीय जरूरत की चीजों को जोड़ दिया जाना चाहिए। गाँधीजी इस तरह वर्तमान शिक्षा पद्धति से क्षुब्ध थे। गाँधीजी शिक्षा और कर्म को एक साथ जोड़कर देखना पसंद करते थे। वे ऐसा मानते थे कि मनुष्य चूँकि उच्च स्तरीय प्राणी है अतः उसकी आवश्यकताएँ भी केवल जैविक स्तर तक ही सीमित नहीं हैं। एक विवेकशील प्राणी होने के नाते उसे पढ़ने और लिखने की जरूरत है लेकिन पढ़ने-लिखने की जो शिक्षा पद्धति हो वह केवल सूचनाओं का संकलन एवं स्मरण नहीं बल्कि मनन एवं पुनर्विचार जरूरी है। पढ़ने के साथ-साथ मौलिक एवं रचनात्मक कार्य करना भी अपेक्षित है। गाँधीजी ने व्यक्ति में हमेशा सम्भावनाओं की खोज की है। वे ऐसा नहीं मानते कि बालक ही केवल शिक्षा ग्रहण कर सकता है, बल्कि उम्र की प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति में विकास करने की संभावनाएँ निहित होती हैं। वे ऐसा मानते थे कि व्यक्ति में शिक्षा तो जन्म से आरम्भ होती है और मृत्यु तक चलती रह सकती है। यही कारण है कि उन्होंने केवल बच्चों की बुनियादी शिक्षा की केवल बात नहीं की बल्कि 14 वर्ष से ऊपर के व्यक्तियों के लिए भी इतर बुनियादी शिक्षा और पूर्ण वयस्कों के लिए प्रौढ़ शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। उन्होंने नारी शिक्षा एवं सह-शिक्षा पर भी बल प्रदान किया था। गाँधीजी की शिक्षा योजना से व्यक्ति में शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक उन्नति के साथ-साथ सहयोग की प्रवृत्ति आदि के गुण भी होंगे। काम के प्रति नकरात्मक अभिवृत्ति का नाश होगा। इस तरह भारतीय समाज को आत्मनिर्भर स्वावलम्बी और आत्माभिमान बनाने का प्रयत्न किया। आयोग द्वारा शिक्षा की पद्धति के विषय में गाँधीजी के विचारों को स्पष्ट करते हुए मण्णवाला ने कहा है। कि गाँधीजी ने

बताया कि स्वावलम्बन मानने में मेरी दृष्टि शुद्ध शिक्षा की उत्तम पद्धति के रूप में स्वीकार करते हो तभी वह उत्तम हो सकते हैं। और उसके द्वारा बालकों को ठोस शिक्षा तभी मिल सकती है जब बालक सच्चा उद्योग करें, उद्योग के साथ खेलवाड़ न करें, उद्योग में अपना समय न बिगाड़ें और उद्योग में जो बच्चा कल और औजार काम में लिये जाते हों उनका पूरी सावधानी से उपयोग करना जानें। समय, काल या औजार का विकास होता तो तब तो यह माना जायगा कि हम बच्चों को गलत शिक्षा देते हैं, हम उनका नुकसान करते हैं। हमारा दावा तो यह है कि उद्योग द्वारा शिक्षा देने से बालक की कर्मन्द्रियों और ज्ञानन्द्रियों के सच्चे विकास के साथ उसकी शुद्धि और हृदय का विकास भी अधिक अच्छी तरह किया जा सकता है। वह दावा तभी सच्चा साबित होगा जब बालक पड़े, अपने काम में आनेवाले औजारों को अच्छी तरह रखना आवे और वह किसी का बिगाड़ न करने की बात सीखे।”

निष्कर्ष:-

इस प्रकार गाँधीजी की मान्यता यह भी थी कि बच्चों को आधुनिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्ति में यह भी साथ-साथ जरूरी है कि वह अपने शेष समय का सदुपयोग भौतिक एवं रचनात्मक कार्यों में करें तथा जीवन के कुछ क्षण समाज सेवा और राष्ट्र सेवा में भी समर्पित करें। गाँधीजी की भावना भी कि यदि वर्तमान शिक्षा एक अच्छी भावी पीढ़ी तैयार नहीं करती है तो वह न केवल कृत्रिम बल्कि निरर्थक और अनुपयोगी भी है। ऐसी शिक्षा से कई प्रकार की त्रुटियाँ पैदा हो जायेंगी। प्रथमतः ऐसी शिक्षा प्राप्त व्यक्ति जीवन में आने वाली कठिन और विपरीत परिस्थितियों के साथ अनुकूलन और सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकता और संभव है कि प्रतिकूल परिस्थितियों से घबराकर विघटन और विचलन का शिकार बन जाय। सही और सच्ची शिक्षा का अभाव में उनमें संघर्ष शक्ति की कमी तो बढ़ेगी ही साथ ही उनमें अनुशासन, समाज सेवा, सहयोग, सद्भावना, नेतृत्व और शांतियुक्त सदगुणों का विकास भी नहीं हो पायेगा। गाँधीजी चूँकि वर्तमान शिक्षा के प्रचलित पद्धति के दोषों से परिचित थे और उसके संभावित परिणामों से वाकिफ थे, इसलिए उन्होंने वर्तमान प्रचलित शिक्षा पद्धति के दोषों को निकालकर नयी पद्धति परियोजना को जनसमूह के सामने प्रस्तुत किया और उसकी उपयोगिता के बारे में लोगों को समझाया तथा इसे अपनाने की प्रेरणा प्रदान की। अपने मौलिक स्वरूप में गाँधीजी की शिक्षा योजना भारत के विकास के मार्ग को प्रशस्त करने में सहायक तो थी, परन्तु आधुनिक विज्ञान एवं औद्योगिक विकास के युग में इसका क्रियान्वयन प्रश्न चिन्ह के रूप में हमेशा बना रहा। यही कारण है कि बाद के दिनों में गाँधीजी की शिक्षा योजना

को आधे अधूरे मन से सरकार एवं संस्थाओं द्वारा अपनाया गया और इसकी सफलता संदेह के घेरे में घिर गयी। गाँधीजी की शिक्षा योजना को भले ही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अति वैज्ञानिक दृष्टि रखनेवाले लोग कम उपयोगी अथवा निरर्थक समझें परन्तु वास्तविकता यह है कि आज भी भारत के स्वावलम्बन में यही सही साबित होगा।

सन्दर्भ:-

1. आचार्य विनोबा-सर्वोदय विचार और स्वराज्य शास्त्र, सं. प्र. वाराणसी-1
2. महात्मा गाँधी -हिन्द स्वराज, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
3. महात्मा गाँधी -मेरे सपनों का भारत, सं. से. सं. प्र. वाराणसी
4. दादा धर्माधिकारी-मानवीयनिष्ठ, सं. से. सं. प्र. वाराणसी
5. मल्लिक-गाँधीविचार दर्शन, न.जी.टू. अहमदाबाद
6. देवी दत्त शर्मा-गाँधीविचार और विश्वशांति, सं.से.सं.प्र. वाराणसी

Corresponding Author

Gaurav Suman*

Research Scholar